वन संरक्षण

वन एक पुनर्युवनीय संसाधन हैं, जिनके संरक्षण को सर्वोच्च प्राथमिकता दिये जाने की आवश्यकता है। निम्नलिखित उपायों द्वारा इस बहुमूल्य संसाधन को रिक्त किये बिना भारत की वन संपदा के पूर्ण उपयोग को सुनिश्चित किया जा सकता है-

1. गहन विकास योजनाओं के अंतर्गत अनुकूल स्थानों पर तीव्र विकास एवं उच्च पैदावार वाली स्वदेशी या विदेशी प्रजातियों के वृक्षों का रोपण किया जाये।
2. उच्च पैदावार वाले क्षेत्रों का चयन।
3. वन दोहन एवं कटाई की सुधरी हुई तकनीकों का उपयोग।
4. अभी तक दुर्गम समझे जाने वाले क्षेत्रों को खोलने हेतु वन संचार का विकास।
5. परिरक्षण एवं संशोषण प्रक्रियाओं के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाय।
6. वन कार्यक्रमों को औद्योगिक विकास योजनाओं के साथ जोड़ा जाय।
7. दावानल जैसी घातक स्थितियों से वनों की सुरक्षा की जाय।
8. एक विश्वसनीय अनुसंधान कार्यक्रम के माध्यम से वन संसाधनों, उनके विस्तार, स्थिति परिमाण, संघटन, मौजूदा काष्ठ परिमाण, विकास दर, विभिन्न उत्पादों की मात्रा, व्यापारिक व औद्योगिक मूल्य, घटाव के आंकड़े, रोजगार के अवसर, व्यापारिक पक्ष तथा वनोत्पादों की खपत आदि की विस्तृत सूची बनायी जाय।

कृषि एवं विकास आवश्यकताओं के कारण विनाश

बढ़ती जनसंख्या के दबाव के साथ, भूमि की मांग कई गुना बढ़ गई, जिसके परिणामस्वरूप देश के वनों में तीव्र संकुचन एवं कमी आई। वन भूमि को कृषि के लिए इस्तेमाल किया गया। वनभूमि का प्रयोग वाणिज्यिक गतिविधियों के लिए भी किया जा रहा है। वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980 के लागू होने तक, वन भूमि का अन्य कामों के

लिए इस्तेमाल हेतु परिवर्तन की वार्षिक दर 1,50,000 हेक्टेयर थी। इसके अतिरिक्त, अतिक्रमण एवं झूम कृषि ने भी कई मिलियन हेक्टेयर भूमि को प्रभावित किया।

पशु जनसंख्या में वृद्धि तथा इसके अनार्थिक प्रबंधन ने वनों की पुनर्रुत्पादन क्षमता के लिए संकट उत्पन्न किया। भारतीय वनों पर आज इनकी मांग बढ़ने के कारण बेहद दबाव है। पनविद्युत योजनाओं, सड़कों तथा शहरीकरण में वृद्धि ने भी वनों के कटान में योगदान किया है।

वन विकास एवं संरक्षण

भारत में विभिन्न कार्यक्रमों के द्वारा निकट भविष्य में कुल भू-क्षेत्र के 33 प्रतिशत भाग पर वनावरण का लक्ष्य रखा गया है। इसी प्रकार पश्चिमी देशों ने विशेष कार्यक्रम **ग्रीन वेव्स** चलाया। इस कार्यक्रम के द्वारा विशेषकर उत्तरी एवं पश्चिमी यूरोपीय देशों में वन संपदा के संरक्षण को काफी बल मिला है।

वन संरक्षण के लिए विश्व के अनेक देशों में कुछ विशेष कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। इनमें आधुनिक फायर वार्निंग सिस्टम को लगाना एवं फायर टॉवर बनाकर दूरबीन की सहायता से वनों की देखभाल मुख्य है। इससे दो लाभ हुए हैं, पहला आग पर नियंत्रण और दूसरा गैर-कानूनी कटाई पर नियंत्रण।

वृक्षारोपण: वन को लकड़ियों के लिए काटा जाता है, पर इन्हें काटने के बाद फिर से उन स्थानों की सफाई कर वृक्ष रोपे जाने चाहिए। इसके अलावा खाली स्थानों पर वृक्षारोपण करना चाहिए।

वृक्षों के काटने के तरीके में सुधार: उन्हीं वृक्षों को काटना चाहिए, जहां वन काफी घने हो गए हों, वृक्ष विकसित हो चुके हों और कमजोर या रोगग्रसित वृक्ष हो, जो खराब

स्थानों में लगे हों। इस प्रकार के वृक्षों को बिल्कुल सफाई से काट देना चाहिए और उन स्थानों पर नए वृक्ष अवश्य लगाने चाहिए।

वन रक्षा: वनों को प्राकृतिक आपदा, यथा-आग और कीड़ों से बचाना चाहिए। कीड़ों से बचाने के लिए नियमित छिड़काव करना चाहिए। वन की स्थिर निगरानी के द्वारा शीघ्रता से आग पर नियंत्रण करना चाहिए।

बर्बादी कम करना: वन उत्पादों के उपयोग में आने वाले औद्योगिक पौधों की बर्बादी कम करनी चाहिए। ये कार्य लकड़ी की खपत को कम करके, अखबारी कागज या अन्य रद्दी कागजों के उत्पादन में होने वाले बर्बाद कागजों को कम करके या फिर से उपयोग में लाकर किया जा सकता है। इसी प्रकार वनों पर आधारित कई उद्योग ऐसे हैं, जिनमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लकड़ियों की काफी मात्र में बर्बादी की जाती है, जिसे पुनः उपयोग में लाकर कम किया जा सकता है।

वन अग्नि नियंत्रण: भारत में वनों के विनाश का एक प्रमुख कारण जंगलों में लगने वाली आग है। यहां अधिकतर मामलों में आग मानव द्वारा ही लगायी जाती है। कतिपय मौकों पर ही यह दुर्घटनावश लगती है। आग की दुर्घटनाओं के कारण हैं- पशुचराई, महुआ के बीजों और पुष्पों का संचयन, तेंदू पत्तों का संचयन, गैर क़ानूनी शिकार और स्थानान्तरण कृषि आदि।

देश में आग लगने के कारणों को ज्ञात करने, नियंत्रण और निषेध के लिए महाराष्ट्र के चन्द्रपुर और उत्तराखण्ड के हल्द्वानी तथा नैनीताल में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू.एन. डी.पी.) की सहायता से एक **आधुनिक वन अग्नि-नियंत्रण परियोजना** शुरू की गई है। वर्तमान में यह योजना 11 राज्यों में चलायी जा रही है। इन योजनाओं का विस्तार अन्य राज्यों में भी किया जा रहा है।

वन नीति 1988

वन नीति, 1952 को वर्ष 1988 में संशोधित किया गया। संशोधित वन नीति, 1988 का मुख्य आधार वनों की सुरक्षा, संरक्षण और विकास है। इस नीति के मुख्य लक्ष्य हैं-

1. पारिस्थितिकीय संतुलन के संरक्षण और पुनस्र्थापन द्वारा पर्यावरण स्थायित्व को कायम रखना,
2. प्राकृतिक सम्पदा का संरक्षण
3. नदियों, झीलों और अन्य जलधाराओं के मार्ग के क्षेत्र में भूमि कटाव और मृदा अपरदन पर नियंत्रण
4. व्यापक वृक्षारोपण और सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों के माध्यम से वन और वृक्षों के आच्छादन में वृद्धि
5. ग्रामीण और आदिवासी जनसंख्या के लिए ईंधन की लकड़ी, चारा तथा अन्य छोटी-मोटी वन्य उपज आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कदम उठाना,
6. राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनोत्पादों में वृद्धि
7. वनोत्पादों के उचित उपयोग को प्रोत्साहन देना और लकड़ी का अनुकूल विकल्प ढूंढना,
8. वन संरक्षण हेतु जन-सहभागिता में वृद्धि के लिए उचित कदम उठाना।

इसके अतिरिक्त 1988 में ही वनों की कटाई तथा गैर-वानिकी उद्देश्यों के लिए वन भूमि के प्रयोग को रोकने संबंधी फॉरेस्ट (कंजर्वेशन) एक्ट, 1980 में भी संशोधन किया गया। नियमों के उल्लंघन के लिए विभिन्न प्रकार के दंडों का प्रावधान किया गया। यू.एन.डी.पी. के सहयोग से 1984 में जंगलों को आग से बचाने के लिए एक **मॉडर्न फॉरेस्ट फायर कंट्रोल प्रोजेक्ट** शुरू किया गया।

1988 की वन नीति में जंगल तथा जंगल में रहने वालों के बीच प्रतीकात्मक संबंध की बात कही गई है। लेकिन, आदिवासी तथा अन्य जंगल वासियों को जंगली फलों के

पेड़, चारा या इंधन-लकड़ी उगने की अनुमति नहीं है, जबकि ये सभी उनके जीवन-यापन के लिए आवश्यक हैं।

इसका कारण यह है कि नीति के तहत् इन्हें **वनेत्तर प्रयोजन** (नॉन फॉरेस्ट यूज़ेज) माना गया है। लेकिन, अनियंत्रित तरीके से बढ़ती जनसंख्या तथा वन भूमि के बढ़ते अतिक्रमण के चलते इस नीति की सफलता संदिग्ध है। इसके अलावा बड़े पैमाने पर सिंचाई तथा खनन योजनाओं से भी वन-क्षेत्र को भारी नुकसान पहुंचा है।

राष्ट्रीय वानिकी कार्रवाई कार्यक्रम (एनएफएपी) National Forestry Action Programme- NFAP

राष्ट्रीय वन नीति 1988 के सामयिक एवं कुशल कार्यान्वयन हेतु सरकार ने एक राष्ट्रीय वन कार्रवाई कार्यक्रम (एन.एफ.ए.पी.) का गठन किया और इसके लिए जून 1993 में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू.एन.डी.पी.) एवं एफ.ए.ओ. के साथ एक प्रोजेक्ट तैयार किया। एन.एफ. ए.पी. वर्ष 1999 में अस्तित्व में आया। इसके अंतर्गत अगले बीस वर्षों में भारत के वनों के सतत् विकास के लिए व्यापक कार्य योजना बनाई गई।

राष्ट्रीय वानिकी कार्रवाई कार्यक्रम का उद्देश्य है- देश के कुल क्षेत्रफल के 33 प्रतिशत को वन क्षेत्र के अंतर्गत लाना एवं वनों के कटान को नियंत्रित करना। कार्यक्रम को मुख्य तत्व इस प्रकार हैं-

1. मौजूदा वन संसाधनों का संरक्षण;
2. वन उत्पादकता का सुधार;
3. वनोत्पादों की कुल मांग में कमी लाना;
4. नीति एवं संस्थात्मक फ्रेमवर्क को मजबूत करना; और
5. वन क्षेत्र में वृद्धि करना

राष्ट्रीय वन आयोग

पर्यावरण और वन मंत्रालय ने फरवरी 2003 में भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश बी.एन. कृपाल की अध्यक्षता में राष्ट्रीय वन आयोग का गठन किया। इसमें छह सदस्य और थे। आयोग ने राज्य केंद्र शासित प्रदेशों और अन्य संबद्ध लोगों से विचार-विमर्श के बाद 28 मार्च, 2006 को अपनी रिपोर्ट प्रधानमंत्री को सौंपी । रिपोर्ट में 23 अध्याय हैं, जिनमें वन नीति, वैधानिक ढांचा, वन प्रशासन आदि के अलावा वन और पूर्वोत्तर, कृषि वानिकी और सामाजिक वानिकी, प्राकृतिक संसाधनों में वन और वित्तीय समर्थन जैसे विशिष्ट मुद्दों पर अलग से विचार किया गया है।

रिपोर्ट में 360 सिफारिशें की गई हैं। इन सिफारिशों पर भारत सरकार और राज्य सरकारों को कार्रवाई करनी है। कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशें इस प्रकार हैं-

- राष्ट्रीय वन नीति, 1988 में किसी परिवर्तन का सुझाव नहीं।
- उद्देश्य की पूर्ति के वन के प्रकार और भौगोलिक विवरण के अनुसार अधिकतम वन/वृक्ष अच्छादित क्षेत्रों का पता लगाने के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान पर बल।
- भारतीय वन अधिनियम, 1927 में संशोधन।
- वन विभाग द्वारा जैव-विविधता अधिनियम, 2002 और पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम का कार्यान्वयन।
- वन संरक्षण अधिनियम, 1980 में और संशोधन तथा ढिलाई नहीं।
- मानव-पशु संघर्ष आदि से बचने के लिए वन्य जीव संरक्षण अधिनियम के तहत प्रजातियों को पुनः अनुसूचित करना।
- 1988 की राष्ट्रीय वन नीति में कोई बदलाव नहीं है।

सामाजिक वानिकी

राष्ट्रीय वन नीति, 1988 विनष्ट या कम महत्व के वनों को ईंधन लकड़ी, चारा और थोड़ी मात्रा में लकड़ी की स्थानीय समुदाय की जरूरतों को पूरा करने का संसाधन बेस बनाने तथा इसके विकास एवं संरक्षण में लोगों की सहभागिता पर बल देती है तथा साथ ही वनों को पर्यावरण सुधार हेतु विकसित करने की बात कहती है। इसलिए सामाजिक वानिकी योजना प्रारंभ की गई जिसने हरित आवरण में वृद्धि की, वनोत्पाद एवं ईंधन लकड़ी की आपूर्ति की तथा थोड़ी लकड़ी और थोड़ा बहुत वनोत्पाद ग्रामीणों तक पहुंचाया। साथ ही शहरी जनसंख्या की ईंधन आवश्यकता को पूरा किया और माचिस उद्योग के लिए कच्चा माल उत्पादित किया।

भारत सरकार के राष्ट्रीय कृषि आयोग ने वर्ष 1973 में सर्वप्रथम **सामाजिक वानिकी** शब्द का इस्तेमाल किया। यह महसूस किया गया कि बढ़ती जनसंख्या के कारण वन दबाव में थे तथा भूमि मानव गतिविधियों के कारण विनष्ट हो रही थी। सामाजिक वानिकी को कुछ मुख्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए लोगों को शामिल करने हेतु अपनाया गया।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भूमिका एवं महत्व: वास्तविक तौर पर भारत में वन 64 मि. हे. (कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 19.47 प्रतिशत) की परिधि में आच्छादित हैं, जो कि 47,500 हेक्टेयर प्रतिवर्ष की गति से ह्रासमान हो रहे हैं। भारत के वनों की उत्पादकता 0.5 मी.^{3} प्रति हेक्टेयर है जो विश्व औसत (2.1 मी.^{3} प्रति हेक्टेयर) से काफी नीचे है। भारत के प्राकृतिक वनावरण में तेजी से कमी आती जा रही है। अतः पारिस्थितिक संतुलन को कायम रखने की दृष्टि से सामाजिक वानिकी का महत्व काफी बढ़ जाता है। एक जनान्दोलन के रूप में सामाजिक वानिकी को 20 सूत्रीय कार्यक्रम में भी शामिल किया गया है। सामाजिक वानिकी के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

1. वन क्षेत्र में वृद्धि करना तथा पारिस्थितिक संतुलन को कायम रखना: इसे नमी एवं मृदा तथा प्राकृतिक अधिवासों के संरक्षण उपायों द्वारा पूरा किया जाता है।

2. आधारभूत ग्रामीण जरूरतों की पूर्ति करना: सामाजिक वानिकी द्वारा ग्रामीणों की पांच मूल आवश्यकताओं- ईंधन, खाद्य, चारा, उर्वरक एवं रेशा की पूर्ति की जाती है। भारत में ईंधन लकड़ी एवं चारे की उपलब्धता कुल मांग की तुलना में क्रमशः एक-चौथाई एवं आधी है, जिसे सामाजिक वानिकी के माध्यम से ही बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इमारती लकड़ी, बांस, गोंड, महुआ, औषधीय घास, लाख इत्यादि लघु वनोत्पादों के माध्यम से ग्रामीण कुटीर एवं लघु उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति भी होती है।

3. बेहतर भूमि उपयोग को सुनिश्चित करना: सामाजिक वानिकी मृदा अपरदन के नियंत्रण, सीमांत भूमि के पुनरुद्धार, जलाक्रांति के निरोधक प्रयासों तथा कृषि-वन-पशुपालन के एकाश्मक समेकन के माध्यम से संतुलित एवं जीवक्षम भूमि उपयोग की उपलब्धि में सहायता करती है।

4. रोजगार निर्माण: सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों द्वारा ग्रामीण बेरोजगारी (विशेषतः गैर-कृषि मौसम में) की स्थिति में संतोषजनक कमी लायी जा सकती है। यह समाज के कमजोर वगों की आय के स्थिरीकरण में सहायक होती है।

5. प्रदुषण नियंत्रण: वृक्षों द्वारा हानिकारक गसों का अवशोषण ऑक्सीजन का उत्सर्जन किया जाता है। इस रूप में वे वायु प्रदूषण को घटाने (विशेषतः शहरी क्षेत्रों में) में सहायक होते हैं।

6. सामान्य पर्यावरण का सुधार एवं मनोरंजन राष्ट्रीय कृषि आयोग द्वारा 1976 में सामाजिक वानिकी के मूल उद्देश्य निरूपित किये गये जो इस प्रकार हैं:

- ईंधन लकड़ी की आपूर्ति, ताकि गाय के गोबर को ईंधन के बजाय प्राकृतिक खाद के रूप में प्रयोग किया जा सके।
- लघु इमारती लकड़ी की आपूर्ति।
- वायु अपरदन से कृषि भूमियों का बचाव।

- चारा आपूर्ति
- मनोरंजन जरूरतों की पूर्ति

सामाजिक वानिकी की योजना

यह योजना 1980-81 में ईंधन लकड़ी की कमी वाले 101 जिलों में आरंभ की गयी थी। इसके तहत **ग्रामीण ईंधन काष्ठ पौधरोपण** तथा **प्रत्येक बच्चे हेतु एक वृक्ष कार्यक्रम** भी शामिल था। यह एक केंद्र प्रायोजित कार्यक्रम था, जिसे कनाडा एवं स्वीडन द्वारा वित्तीय व तकनीकी सहायता उपलब्ध करायी गयी थी। सामाजिक वानिकी कार्यक्रम को जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, प. बंगाल, ओड़िशा, गुजरात एवं तमिलनाडु में सफलता प्राप्त हुई है।

सामाजिक वानिकी की एक मुख्य विशेषता स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी रही है, जिनमे ग्रामीण गरीब, भूमिहीन, श्रमिक, स्वयंसेवी संगठन, महिला मंडल, ग्रामीण युवा, स्कूल शिक्षक इत्यादि शामिल हैं। वन विभाग द्वारा पौध प्रजातियों के चयन में सहायता दी जाती है। तथा उत्पाद को स्थानीय समुदाय में बांट दिया जाता है। सामुदायिक स्थलों, नहर बंधों, तालाब बन्धों, सडकों व रेलमार्गों के किनारे, पंचायती भूमियों, व्यर्थ व् दलदली भूमियों, जलाक्रन्तिग्रस्त क्षेत्रों, निम्न वनों, औद्योगिक क्षेत्रों, स्कूल व् कालेज परिसरों, अस्पतालों, स्मारकों एवं ऐतिहासिक स्थलों इत्यादि पर वृक्षारोपण किया जाता है।

सामाजिक वानिकी कार्यक्रम का आलोचनात्मक मूल्यांकन

1. कृषिवानिकी में सफलता कितु ग्राम वानिकी की उपेक्षा: सामाजिक वानिकी कार्यक्रम के दो मुख्य घटक हैं- पहला, ग्रामीण भूमियों का वनीकरण, तथा; दूसरा, निजी भूमियों पर वृक्षारोपण, जिसे कृषि वानिकी कहा जाता है। वृक्षों के तीव्र उत्पादन की दृष्टि

से कृषि वानिकी अत्यंत सफल रही है। गुजरात एवं कर्नाटक के कुछ क्षेत्रों में तो यूकेलिप्टस वृक्षों का आधिक्य स्थापित हो चुका है। दूसरी ओर ग्राम या सामुदायिक वानिकी असफल हुई क्योंकि स्थानीय लोगों द्वारा इसमें प्रभावी सहभागिता नहीं निभाई गयी। ग्राम प्रायः विजातीय होते हैं, जिनमें समन्वय की भावना का अभाव पाया जाता है। ग्राम परिषदें भी अनेक ग्रामों से बना निकाय होती हैं तथा जो प्रत्येक सदस्य ग्राम को विश्वास में नहीं ले पाती हैं। इसके अतिरिक्त सामान्य भूमि के प्रबंधन की कोई परंपरा भी मौजूद नहीं होती।

2. बाजारोन्मुखी वृक्षों को वरीयता तथा ईंधन काष्ठ व चारा वृक्षों की उपेक्षा: यह सामाजिक वानिकी के उद्देश्यों के प्रतिकूल ही नहीं था बल्कि वन भूमि पर बढ़े दबाव का कारण भी था। किसानों द्वारा वनों से लकड़ी, पत्तियां, घास इत्यादि एकत्रित करना पहले की भांति जारी रखा गया।

3. कोष की कमी: विदेशी योगदान की तुलना में सरकारी कोष की कमी के कारण वन भूमियों पर चलायी जा रही सामाजिक वानिकी परियोजनाओं को पूंजी के अभाव का सामाना करना पड़ा। आधे-अधूरे रूप में संचालित ये परियोजनाएं अपेक्षित परिणाम देने में असफल रहीं।

त्रुटिपूर्ण प्रजाति चयन तथा अवैज्ञानिक पद्धतियां

वृक्षों की प्रजातियों के चयन तथा वृक्षों के बीच स्थानांतर पर सावधानीपूर्वक विचार नहीं किया गया। मध्यवर्ती उत्पाद देने वाली प्रजातियों को समुचित प्रोत्साहन नहीं दिया गया। इसके अतिरिक्त घास, फली, चारा, फल एवं अन्य गौण वनोत्पादों की भी उपेक्षा की गयी। पौधरोपण लागत तथा कर्मचारी पर्यवेक्षण समय में कटौती करने और मध्यवर्ती प्रबंधन कार्यों से बचने के लिए वृक्षों के बीच स्थानांतर को घटाया गया। यूकेलिप्टस एवं टीक जैसे इमारती काष्ठ केन्द्रित वृक्षों के रोपण पर अत्यधिक जोर दिया

ही न्यूनतम संभव समय में चारा व ईंधन लकड़ी प्राप्त करने हेतु झाड़ियों व घासों जैसे जरूरी अनुपूरक उपायों पर भी अधिक ध्यान नहीं दिया गया।